फूलचंद जैन

25 वर्षों तक शासकीय मिडिल स्कूल में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया है। वर्ष 2008 में सेवानिवृत्त होने के बाद अपने अध्यापकीय जीवन के अनुभवों का लेखन कर रहे हैं।

नब्बे के दशक में पंचायती राज व्यवस्था लागू हुई। इसके साथ ही गांवों में ग्राम शिक्षा समितियों का गठन हुआ। शिक्षा व्यवस्था में समुदाय की भागीदारी का दावा बढ़ा लेकिन वे अपने हस्तक्षेप को लेकर आशंकित ही रहे। एक प्रधानाध्यापक ने उस दौर में अपने विद्यालय को अच्छा विद्यालय बनाने का सपना देखा और इसके लिए प्रयास में जुट गए। उन्हें अपने इस प्रयासों में ग्रामीणों और अधिकारियों का सहयोग मिला तो कई व्यवस्थागत परेशानियों का भी सामना करना पड़ा। यह लेख इन्हीं अनुभवों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है।

गांव का समाज और स्कूल

गांव में* पूर्व माध्यमिक विद्यालय खुला तो पांचवीं पास कर घर बैठ जाने वाली लड़कियां भी पढ़ने लगीं। विद्यालय में प्राथमिक कक्षाओं के लिए पर्याप्त कमरे नहीं थे। जो कमरे थे, उनमें हवा और प्रकाश के लिए पर्याप्त खिड़कियां भी नहीं थीं। बारिश के दिनों में बच्चों को भीगने से बचाने के लिए कमरों में बैठना पड़ता था। उमस भरे माहौल में एक घंटे बाद ही कमरों में दम घुटने लगता था। कुछ बच्चों को कै तक हो जाती। जिन अध्यापकों ने ग्रामीण क्षेत्र के ऐसे कमरों में बच्चों के साथ बैठकर देखा है, वे इस पीड़ा को समझ सकते हैं।

ऐसे में पूर्व माध्यमिक स्तर की कक्षाओं के लिए व्यवस्था करना चिन्ता का विषय था। प्राथमिक शाला भवन के पास ही मैदान था। मैदान में चार-पांच महुआ के पेड़ थे। इन्हीं पेड़ों के बीच एक बड़े चबूतरे पर महिला प्रशिक्षण केन्द्र का खुला-खुला टीन शेड था। परन्तु वहां तक पहुंचने के लिए मैदान में लगी जरियां, करौंदी, पंवार, गाडरमार और आइवोमियां के झाड़-झंकारों से गुजरना पड़ता था। इसी मैदान में मुहल्ले के लोग सुबह-शाम मल त्यागने आते-जाते थे। शेष जमीन पर मुहल्ले के लोग अपना बेड़ा बनाए थे, जिस पर उनका कब्जा था। गांव की तरफ जाने वाली सड़क के किनारे विद्यालय की तरफ पड़ोसियों के घूरे थे, जिन पर प्रतिदिन कूड़ा-करकट और गोबर डाला जाता था। घरों की सफाई से जो भी कूड़ा निकलता, उसका विसर्जन यहीं होता था।

* इस अनुभव का मकसद किन्हीं व्यक्तिगत पहचानों को उजागर करना नहीं है, अतः अनुभव में व्यक्तिओं और स्थानों के सभी नाम बदल दिए गए हैं।

मैंने पूरे एक वर्ष तक इस दृश्य को देखा, भोगा और बर्दाश्त किया। यह बात 1994 की है। गांव में त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था के तहत चुनाव हो गए थे। नया-नया पंचायती राज लागू हुआ था। नई-नई व्यवस्थाएं भी बनी थीं, इन्हीं व्यवस्थाओं के अंतर्गत गांव में ग्राम शिक्षा समिति का भी गठन हो गया था। ग्राम शिक्षा समिति के सदस्यों में उत्साह था, लेकिन कुछ शिक्षक विद्यालय की व्यवस्था में समिति के सदस्यों का हस्तक्षेप बढ़ने को लेकर आशंकित भी रहने लगे थे।

ग्राम शिक्षा समिति की बैठक प्रतिमाह होती थी। सरपंच इस समिति का पदेन अध्यक्ष एवं प्रधानाध्यापक पदेन सचिव होता था और पंच सदस्य भी थे। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग कोटा की महिला सदस्य भी इनमें शामिल थीं। प्रत्येक बैठक में संस्था के लिए जरूरी मुद्दों पर चर्चा होती थी। उन्हें हल करने का प्रयास भी किया जाता था। प्रधानाध्यापक होने के नाते विद्यालय में बढ़ती छात्र संख्या, कमरों की कमी, उमस के वातावरण में चैन से बैठने की व्यवस्था करना, मेरी प्राथमिकताओं में था।

विद्यालय से लगे मैदान में महुआ के पेड़ों के नीचे बैठने की व्यवस्था बनाने का विकल्प मेरे मन में था। वहां पहुंचने के लिए मैदान में लगी जरियां, करौंदी, पंवार, गाडरमार और आइपोमिया के झाड़-झंकारों को साफ करना था। शेष जमीन से मुहल्ला के लोगों के बेड़े हटवाने थे। मैंने इसी साल बारिश के बाद उस स्थान को साफ करने की योजना बनाई। मैंने अकेले ही प्रतिदिन कुछ पंवार उखाड़ना शुरू कर दिया। बच्चे पेशाब करने, पानी पीने के बहाने आते और मुझे काम करते हुए देख जाते। वे नाक-मुंह भी सिकोड़ते, क्योंकि उन्हें पता था कि यहां पड़ोस के लोग मल त्यागने भी आते हैं। गांव वाले ऐसे स्थान को 'हगनौटा' कहते थे। अतः ऐसे स्थान पर काम करना उन्हें उचित नहीं लगता था। परन्तु मुझे काम करते हुए देखना, उनके लिए कौतूहल का विषय था। जितना स्थान साफ होता जाता उतना देखते हुए अच्छा भी लगता था। सतखपड़ी खेलने लायक मैदान साफ हो गया तो मैंने बच्चों को वहां सतखपड़ी खेलने को कहा।

कुछ बच्चे खाने की छुट्टी में वहां खेलने भी लगे थे। खेलते समय गेंद कभी-कभी दूर चली जाती। वहां से गेंद उठाने जाना थोड़ा मुश्किल होता था। खेलने के लिए और कोई स्थान भी नहीं था। बच्चे सफाई करने के लिए उत्सुक दिखने लगे, लेकिन आगे कौन आए? कुछ बच्चों से उखड़े हुए झाड़-झंकार को उठाकर फेंकने को कहा तो उन्होंने मना नहीं किया। अब यह सिलसिला रोजाना चलता रहता।

बच्चों के बैठने के लिए स्थान की कमी की वजह से मैं जिला शिक्षाधिकारी से अनुमति लेकर दो पारियों में विद्यालय लगाने लगा था। पहली पारी 7 से 12 बजे तक और दूसरी 12 से 5 तक। सुबह की पारी के समय गांव के जानवर विद्यालय के सामने ही इकट्ठा होते थे। उनका गोबर आंगन में पड़ा होता था। यह समस्या सिर्फ बारिश के दिनों की थी। बारिश के बाद तो गोबर इकट्ठा करने वाले लोग उसे उठा ले जाते थे।

मैंने एक दिन प्रार्थना सभा में गोबर उठाने की चर्चा की। बच्चे बोले, ''फावड़ा मंगा दो, हम उससे भरकर फेंक देंगे।'' इस तरह कक्षा के कमरों की सफाई से लेकर आंगन तक की सफाई का काम लड़के-लड़कियां करने लगे। सफाई का क्षेत्र लगातार बढ़ता जा रहा था। विद्यालय परिसर में थोड़ा आगे महिला एवं बाल विकास विभाग का टीन शेड एक बड़े चबूतरे पर बना था जिसका आकार 20' × 15' का था। साथ में स्टोर रूम भी था। फर्श पर पत्थर बिछे थे। टीन शेड में स्कूल के पास रहने वाले शरारती बच्चे टट्टी-पेशाब कर जाते थे। इस केन्द्र में कभी महिलाओं का कोई कार्यक्रम नहीं हुआ। मेरा लक्ष्य इसकी सफाई करके इसे बच्चों को पढ़ाने के लिए इस्तेमाल करने का था। लेकिन वहां तक पहुंचने के रास्ते को साफ करना भी जरूरी था।

6, 7 एवं 8 की कक्षाएं सुबह की पारी में लगती थीं। एक दिन प्रार्थना सभा के दौरान मैंने बच्चों को अपनी योजना बताई। बच्चों ने कहा, ''इतना गंदा है, उसे कौन साफ करेगा?'' मैंने कहा, ''सफाई हमें ही करनी है। मैं तो रोजाना कर ही रहा हूं।'' शनिवार के दिन खाने की छुट्टी के बाद बाल सभा के समय में मैदान

साफ करने का कार्यक्रम रखा गया। सभी लड़के-लड़कियां सफाई करने के लिए राजी हो गए। किसी ने पंवार उखाड़ा, किसी ने मैदान में पड़े बोल्डर इकट्ठे किए। किसी ने कूड़ा भरकर फैंका। इस तरह दो घंटा श्रमदान हुआ। अब महिला प्रशिक्षण केन्द्र तक पहुंचना हमारे लिए आसान हो गया। विद्यालय परिसर की सफाई में कभी कोई ग्रामीण भी अपना सहयोग दे जाता था।

अगले शनिवार को महिला प्रशिक्षण केन्द्र साफ करने का लक्ष्य रखा गया। सफाई के लिए गेंती, फावड़ा, तसला, आदि सामान लड़के-लड़कियों के यहां से आ गया। गांव के लोग हमें काम करते देखते और खुश होते। विद्यालय परिसर के पास लगे हैण्डपंप से पानी लाकर फर्श को धोया और सूखने के लिए छोड़ दिया। हैण्डपंप सड़क किनारे लगा था। उसके पानी का बहाव स्कूल से आंगन की तरफ था, जिसे रोकने के लिए आस-पास के स्थान को थोड़ा ऊंचा उठाना था। अतः छरिया की जरूरत महसूस होने लगी।

स्कूल के पास में ही मानसिंह का नया कुंआ खुदा था। वह खुशी-खुशी कुंए से निकली मिट्टी, पत्थर और छरिया स्कूल को देने को तैयार हो गया। छरिया ढोकर लाने के लिए एक-दो दिन में बैलगाड़ी का इंतजाम हो गया तब खाने की छुट्टी में एक दिन मैं और कक्षा 8 के 5-6 लड़के बैलगाड़ी लेकर छरिया भरने गए। मैंने स्वयं गाड़ी हांकी। लोग मुझे गाड़ी हांकते देख खूब हंसते, मजाक करते, तारीफ करते। हम लोगों ने छरिया बैलगाड़ी में भरा और उसे विद्यालय तक लाए। तीन-चार दिन यह काम चला। इस तरह महिला प्रशिक्षण केन्द्र तक पहुंचने का हमारा रास्ता साफ-सुथरा हो गया था।

प्राथमिक शाला, शीतलपुर के प्रधानाध्यापक श्री मोहन लाल इस गांव में पिछले दस साल से कार्यरत थे। विद्यालय परिसर की सफाई, उसे गांव वालों का सहयोग, ग्रामीणों द्वारा मेरी तारीफ, इसे देखकर वे हैरान थे। विद्यालय भवन की पुताई, परिसर की सफाई, दो पारियों में विद्यालय चलने से पढ़ाई एवं विद्यालय की व्यवस्था में आए परिवर्तन को देख किसी गांव वाले ने मोहन लाल जी से कह दिया, ''आप तो इतने सालों से यहां हो, पर यह सब आप नहीं कर पाए।''

अभी तक प्राथमिक स्तर की पांचों कक्षाएं एक साथ लगती थीं। मैंने मोहन लाल जी से कक्षाओं को अलग-अलग बैठाने को कहा। महिला प्रशिक्षण केन्द्र हवादार और खुला-खुला था। मैंने उनसे अधिक छात्र संख्या वाली कक्षाएं वहां लगाने को कहा। वह मुझसे गुस्से में बोले, ''मैं तो वहां नहीं जाऊंगा।'' मैंने कहा, ''क्लास तो वहां लगानी पड़ेगी। मैं हैडमास्टर हूं। मेरी व्यवस्था अनुसार कार्य करना होगा।''

वे उम्र में मुझसे 12-13 वर्ष बड़े थे। लम्बे समय से प्रधानाध्यापक रहे थे। उन्हें आज्ञा देने की आदत थी, सुनने की नहीं। वे बोले, ''तुम्हारे जैसे मैंने सत्रह हैडमास्टर देख लिए। तुम लगते कहां हो?'' मैंने प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। मोहन लाल जी को जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय में साक्षरता अभियान के समन्वयक रहे एक अधिकारी का विशेष संरक्षण प्राप्त था। मुझे पता था कि मोहन लाल जी की शिकायत शिक्षा विभाग में करने से कोई लाभ नहीं मिलेगा।

ग्राम शिक्षा समिति की अगली बैठक में मैंने विद्यालय परिसर से लोगों के बेड़ा एवं घूरे हटवाने का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव पास हो गया। अगले दिन सरपंच ने चौकीदार से गांव में मुनादी करा दी कि विद्यालय परिसर में जिन लोगों के बेड़ा हैं, वे उन्हें हटा लें। जिन लोगों ने घूरे बनाए हुए हैं, वहां कूड़ा न डालें तथा उन्हें उठा लें। बिना मुकदमाबाजी के परिसर खाली हो गया। मोहन लाल जी द्वारा मेरे साथ किए गए दुर्व्यवहार की चर्चा भी मैंने समिति के सामने रख दी। चर्चा सुनते ही युवा सदस्य उत्तेजित हो उठे। मोहन लाल जी से पूछा गया। उन्होंने कहा, ''मैंने गुस्से में कह दिया था।'' मोहन लाल जी की स्वीकारोक्ति पर एक सदस्य इस बात पर अड़ गए कि मोहन लाल जी हैड मास्साब से अभी माफी मांगें। स्थिति को समझते हुए मोहन लाल जी ने खेद व्यक्त किया, लेकिन बैठक से बाहर आते ही बोले, ''मान गए जैन साहब। आपने मुझे कहां आकर निपटाया?''

अब महिला प्रशिक्षण केन्द्र में कक्षाएं लगने लगीं। शिक्षक समाख्या योजना मेरे विद्यालय में चालू हो गई थी। यूनीसेफ के सहयोग से चलने वाली इस योजना को आदर्श रूप देने के लिए मेरे विद्यालय को चुना गया। इसकी वजह से बच्चों को बैठने के लिए टाट-पट्टियां मिलीं। अधिकारी बार-बार विद्यालय आने लगे। उनके बार-बार आने से शिक्षकों में समय से विद्यालय आने-जाने का नियम बन गया। शिक्षक पढ़ाने में और रुचि लेने लगे।

कुछ समय बाद एक दल वीडियो कैमरा सहित हमारे यहां आया। विद्यालय में की जाने वाली गतिविधियों की फोटोग्राफी हुई। विद्यालय परिसर में रखी मोटर गाड़ियां और कैमरे, आदि देखकर ग्रामीण भी जुट गए। ग्रामीणों को यह सब अच्छा लगा क्योंकि उन्हें लगा कि उनके गांव का नाम रौशन हो रहा है।

सम्मेलन, जन सहयोग और निगहबानी

संपूर्ण साक्षरता अभियान, मालपुरा के तत्कालीन सचिव महेन्द्र पाल सिंह ने मुझसे अपने विद्यालय में विकास खंड स्तरीय साक्षरता सम्मेलन कराने का प्रस्ताव रखा। मैंने स्वीकार कर लिया। गांव में आकर ग्राम शिक्षा समिति के सदस्य पंचों एवं गांव के प्रतिष्ठित लोगों को बुलाकर मैंने सबको सम्मेलन की सूचना दी। सब लोगों ने एकमत से सहमति दे दी। सम्मेलन में मालपुरा विकासखंड के समस्त सरपंच, मिडिल स्कूलों के हैडमास्टरों के अतिरिक्त जनपद अध्यक्ष, जनपद सदस्य, तहसीलदार, डिप्टी क्लेक्टर एवं कलेक्टर को भी आना था। सम्मेलन 25 मार्च, 1995 को प्रातः 11 बजे से होगा, यह सूचना प्रसारित हो गई थी।

निर्धारित तिथि से पूर्व शामियाना, कुर्सियां, लाउडस्पीकर तथा स्थान की सजावट करनी थी। गांव वालों ने सम्मेलन के लिए मेरा पूरा सहयोग किया। एक जैन तीर्थ क्षेत्र से मुफ्त में शामियाना मिल गया। किसी व्यक्ति ने अपना ट्रेक्टर-ट्राली दे दिया। गांव के लोग ट्रेक्टर से शामियाना उठा लाए। शामियाना लगा। कुर्सियां लगीं। झालरे लटकाई गईं। माइक आए। बल्लियां गाड़ी गईं और उन पर भी झालरें लटकाई गईं। दरवाजे पर गढ्ढे खोदकर केले के पेड़ लगाए गए। आम के पत्तों की बन्दनवार बांधी गई। गांव से 20 लकड़ी के तख्त बैठने को मंगाए गए। सब कुछ निःशुल्क, श्रमदान से हुआ।

निर्धारित तिथि को सम्मेलन स्थल पर अतिथियों के आने का सिलसिला शुरू हुआ तो 1 बजे तक चलता रहा। जन-समुदाय उमड़ पड़ा था। उसे देखने गांव के लोग भी आ-जा रहे थे। कलेक्टर महोदय ने सम्मेलन को संबोधित किया और पठन-पाठन सामग्री का भी वितरण किया।

हमारे विद्यालय में ग्रामवासियों ने अपने सहयोग से संपूर्ण साक्षरता अभियान की सफलता की नींव रख दी थी। ग्रामीणों का विद्यालय में आना-जाना बढ़ गया था। स्टाफ के सदस्यों को यह अच्छा नहीं लग रहा था। शिक्षकों को समय से विद्यालय आना-जाना पड़ रहा था। उन्होंने मुझसे कहा भी कि ये ही लोग किसी दिन आपके लिए परेशानी पैदा करेंगे। एक दिन एक शिक्षक 8 बजे विद्यालय आए। एक गांव वाले ने पूछा, ''मास्साब कै बजे हैं?'' मास्साब लज्जित हो गए।

मुझे कई बार देर से आने वाले शिक्षकों और बच्चों के लिए गेट पर ताला डालना पड़ता था। शिक्षक मुझे मन ही मन गालियां देते। ग्रामीण उन्हें गेट के बाहर खड़ा देखते, इससे वे लज्जित होते थे।

जन सहयोग शारीरिक तो था ही, आर्थिक भी था। एक बार जन सहयोग की राशि से विद्यालय के कमरे की दीवार पर पलस्तर और फर्श का कार्य हो रहा था। फर्श के लिए बोल्डर बच्चों ने परिसर से इकट्ठे किए थे। विद्यालय के लिए रेत सस्ती दर पर स्थानीय गदेरे ला देते थे। कारीगर और मजदूर विद्यालय के लिए कम मजदूरी पर भी काम करने को तैयार थे। एक कमरे की दीवारों का पलस्तर चल रहा था। पलस्तर कुछ रह गया था और पैसा नहीं बचा था। मैंने कारीगरों से कहा कि कल काम नहीं लग पाएगा क्योंकि पैसा नहीं

बचा है। कारीगर ग्राम पंचायत का पंच और ग्राम शिक्षा समिति का सदस्य भी था। उसने कहा, ''अधूरा पलस्तर अच्छा नहीं लगेगा।'' मैंने कहा, ''सीमेंट और रेत भी नहीं है।'' उसने कहा, ''सरपंच से कहो, वे दे देंगे। देवी जी का मंदिर हो या सरस्वती जी का। लगना तो मंदिर में ही है।''

मैंने सरपंच के पति से कहा, ''कुछ रेत सीमेंट चाहिए। काम अधूरा पड़ा है।'' वे बोले, ''कल उठवा लेना।'' अब मजदूरी देना शेष था। कारीगर बोला, ''तुम हमाय गांव खो मरे जा रहे और हम कल की मजूरी मांगे। हम सब कल फ्री काम करहें।'' कमलचन्द और मजदूरों की यह बात सुनकर मैं सन्न रह गया। एक तरफ पूरे माह वेतन की गारंटी वाला मैं और दूसरी तरफ यह कमलचन्द और उसके साथी जिन्हें आज काम मिला तो कल अनिश्चित, फिर भी कितने आत्मविश्वास से फ्री काम करने के लिए तैयार थे।

ऑफिस में ड्यूटी -- स्कूल से ओ.डी.

अब मेरा लक्ष्य विद्यालय को एक आदर्श विद्यालय के रूप में स्थापित करना था, लेकिन इस लक्ष्य की राह में बाधाएं कई थीं।

पंचायती राज व्यवस्था से पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी जिले की शिक्षा का सर्वोच्च अधिकारी था। जिले में कार्यरत लगभग तीन हजार सहायक शिक्षकों के आर्थिक प्रकरण उनके कार्यालय से निपटते थे। जिला शिक्षा अधिकारी, वामनपुरा, कार्यालय में मैंने कई सहायक शिक्षकों को ओ.डी. पर रहते देखा था। उनमें से एक सहायक शिक्षक अपनी पदोन्नति से पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय में ओ.डी. पर थे। प्रधानाध्यापक प्राथमिक शाला के पद पर उनकी पदोन्नति हुई। उन्होंने सहायक शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक प्राथमिक शाला के पद पर रहते हुए लगभग 40 साल नौकरी की। जिस संस्था में वे पदस्थ थे, वहां वे कभी नहीं गए। उनके साथी शिक्षक चाहते थे कि वे सेवानिवृत्ति के दिन यहां न आएं क्योंकि अगर वे आते तो उनके साथी शिक्षक विदाई में उनके बारे में क्या कहते?

यह एक उदाहरण मात्र है। ऐसे कई शिक्षक जिन्हें मकान बनवाना हो या अस्पताल में किसी मरीज की देखभाल करनी हो, जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय में ओ.डी. लगवा लेते हैं। ओ.डी. पर रहने का सिलसिला अभी भी चलता है। किसी को परेशान करना हो, ओ.डी. लगा दो। परेशानी पैदा करने वाले स्थान पर किसी को सुविधा देनी हो, ओ.डी. लगा दो।

विधानसभा सत्र शुरू होते ही ओ.डी. के देव जाग जाते हैं। मंडल परीक्षा के दौरान तो ओ.डी. पर रहने वालों का मजा हो जाता है। माध्यमिक शिक्षा मंडल की दसवीं और बारहवीं की परीक्षाएं मार्च माह में शुरू होती हैं और लगभग पूरे माह चलती हैं। अधिकांश परीक्षा केन्द्र नगरों में बनाए जाते हैं। इन नगरों के 5-10 किलोमीटर की परिधि में आने वाली प्राथमिक और पूर्व माध्यमिक शालाओं के लगभग पूरे शिक्षक परीक्षा की ओ.डी. पर चले जाते हैं। परीक्षा केन्द्र पर प्रतिदिन कितने पर्यवेक्षक चाहिएं, कितने बुलाए गए हैं, कितने ड्यूटी दे रहे हैं; परीक्षा केन्द्र अध्यक्ष इस ओर ध्यान नहीं देते। कम पर्यवेक्षक होने पर अतिरिक्त पर्यवेक्षकों की मांग तो वे करते हैं। परन्तु अतिरिक्त होने पर उन्हें मुक्त नहीं करते। उधर ग्रामीण विद्यालय शिक्षक विहीनता या शिक्षकों की कमी का सामना करते हैं। वार्षिक परीक्षा शुरू होने के पूर्व शिक्षक एक माह से अपने विद्यालय में न हो, परिणाम खराब न भी हो तो भी बच्चों की पढ़ाई का नुकसान तो होता ही है।

गांव के लोग स्कूल की इन परिस्थितियों के प्रति गंभीर नहीं हैं। वे किसी भी तरह के दबाव में आ जाते हैं या व्यक्तिगत संबंध निकल आने पर भी ऐसे शिक्षकों के प्रति तटस्थ हो जाते हैं या कई बार उनके साथ हो लेते हैं। बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा के प्रति उनकी लापरवाही शिक्षकों को उत्तरदायित्वहीन बना रही है। विद्यालय के शिक्षक गांव को क्या दे रहे हैं, यह उनके आकलन का विषय बनाया जाना चाहिए।

मेरे विद्यालय से कर्मचारियों का ओ.डी. पर रहने का सिलसिला हर समय चलता रहा। कभी भृत्य ओ.डी. पर हैं तो कभी जन शिक्षक ओ.डी. पर हैं तो कभी विषय शिक्षक। एक सहायक शिक्षक गणित पढ़ाते थे। बीच शिक्षण सत्र में उनकी ओ.डी. लग गई। सत्र में विद्यालय 232 दिन खुला और वे मात्र 99 दिन विद्यालय में रहे। जनप्रतिनिधियों से कहकर कलेक्टर को पत्र लिखवाया। अंततः अप्रैल माह में मुक्त होकर वे विद्यालय आए। गणित विषय का परीक्षाफल 24 प्रतिशत रहा। जिला शिक्षा अधिकारी ने मुझे और विषय शिक्षक को कारण बताओ नोटिस दिया। नोटिस के जवाब से वे संतुष्ट नहीं हुए। जिला शिक्षा अधिकारी ने शिक्षक की वेतन वृद्धि बन्द करने और मुझे 'सेवापुस्तिका में चेतावनी दर्ज करने' की सजा दी। मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत पदेन अपर संचालक लोक शिक्षक होते थे। मैंने उनके पास अपील की। उन्होंने निर्णय दिया जिसमें जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा पारित आदेश को निरस्त किया गया।

एक सहायक शिक्षक कक्षा 6, 7 एवं 9 को गणित एवं विज्ञान पढ़ाते थे। उन्हें सजा देने के लिए उनकी ओ. डी. दूसरी संस्था में लगा दी गई, इससे बीच सत्र में विषय पढ़ाने का संकट उपस्थित हो गया। मुख्य कार्यपालन अधिकारी, जिला पंचायत को पालक शिक्षक संघ के अध्यक्ष ने ओ.डी. निरस्त करने को पत्र लिखा तब ओ. डी. समाप्त हुई।

समय पर विद्यालय आने और समय से जाने को लेकर मेरा विवाद कई शिक्षकों से हुआ और इसकी वजह से कई महिला शिक्षकों के पति मुझे गाली देकर गए। मैं सुनता रहा। एक महिला शिक्षक ने ओ.डी. लगवा ली ताकि विद्यालय आने-जाने का झंझट ही मिट जाए।

दिखाने लायक स्कूल

संयुक्त संचालक लोक शिक्षण, रहीमपुर संभाग ने मेरे विद्यालय का निरीक्षण किया। कमरों की कमी के कारण विद्यालय दो पारियों में चलता था। उनके आदेश पर विद्यालय को एक पारी में चलाना पड़ा। अतः पूर्व माध्यमिक स्तर की कक्षाएं कभी पेड़ों के नीचे तो कभी महिला प्रशिक्षण केन्द्र और प्राथमिक स्तर की कक्षाएं कमरों में लगतीं। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) की प्रगति को देखने विदेशी टीम को जिला के भ्रमण पर आना था। उसकी तैयारी में प्रदेश स्तर के अधिकारी जिले के भ्रमण पर आते रहते थे। कार्यक्रम की सफलता मैदानी स्तर पर दिखाई दे, इसी आधार पर आगे की राशि जिले को मिलनी थी।

मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत डी.पी.ई.पी. कार्यक्रम को सफल दिखाना चाहते थे। उन्होंने मेरे विद्यालय में विकासखंड स्तर के एक अधिकारी को भेजा। मैं अपने विद्यालय को बेहतर सिद्ध करने के लिए लालायित था। इसलिए मैंने विदेशी टीम के लिए अपना विद्यालय दिखाने की स्वीकृति दे दी।

मेरे विद्यालय परिसर में प्राथमिक बालक शाला, प्राथमिक कन्या शाला, पूर्व माध्यमिक शाला एवं शिशु शिक्षण केन्द्र संचालित थे। इस समय तक कन्या शाला का अलग भवन बन गया था। शिशु शिक्षा केन्द्र स्कूल परिसर में स्थित पंचायत भवन में लगता था। प्राथमिक बालक शाला का भवन पुराना ही था। परन्तु उसमें स्थानीय जन सहयोग से बहुत काम हो चुका था। पूर्व माध्यमिक शाला की कक्षाएं अभी भी पेड़ों के नीचे अथवा महिला प्रशिक्षण केन्द्र में लगती थीं। परन्तु मेरा पूरा विद्यालय बेहतर शिक्षण एवं सफाई व्यवस्था के लिए जाना जाने लगा था। चारदीवारी के स्थान पर तार लगा लिए गए थे। विद्यालय में उपलब्ध बाल साहित्य की पुस्तकों को दीवार पर कीलें ठोककर पतले तार पर, बच्चों की पहुंच की ऊंचाई पर लटकाया गया था। दरवाजों पर डोरमेट थे और फर्श बिछे हुए थे। बाहर की दीवार पर शीशा टंगा था। कंघा, तौलिया, साबुनदानी एवं तेल रखा था।

प्रादेशिक स्तर के अधिकारी भी विकासखंड में घूमकर विदेशी टीम को दिखाने लायक संस्थाओं की खोज कर रहे थे। अब तक हमारा विद्यालय परिसर एवं विद्यालय आकर्षक लगने लगा था। संकुल स्रोत केन्द्र पर

बहुत सारी सहायक शिक्षण सामग्री उपलब्ध थी। सभी कक्षाओं में टाट-पट्टियां, ब्लैकबोर्ड एवं सहायक शिक्षण सामग्री उपलब्ध थी।

प्रदेश स्तर के अधिकारी मेरे यहां भी आए। वे बेहद संतुष्ट हुए। वे बोले, ''आपके यहां की तीनों संस्थाएं विदेशी टीम को दिखाई जाएंगी।'' विदेशी टीम आई। विदेशी टीम के साथ जिला पंचायत के मुख्य कार्यपालन अधिकारी भी आए। टीम डेढ़ घंटे हमारे विद्यालय में रही। जिला पंचायत के मुख्य कार्यपालन अधिकारी ने जाते समय मुझे धन्यवाद दिया। हाथ मिलाया और कहा, ''कोई काम हो तो बताना।''

मैंने तुरंत विद्यालय को एक पारी में चलाने संबंधी संयुक्त संचालक के आदेश और इससे होने वाली परेशानियों के बारे में बताया। उन्होंने मुझे अपने कार्यालय बुलाया। दूसरे दिन उनके कार्यालय पहुंचकर मैंने दो पारियों में विद्यालय संचालित करने का आदेश देने का अनुरोध किया। उन्होंने उसी पत्र पर दो पारियों में विद्यालय संचालित करने का आदेश प्रसारित कर दिया। अगले दिन से विद्यालय फिर दो पारियों में चलने लगा।

यह मुख्य कार्यपालन अधिकारी यहां से चंडीगढ़ गए थे। उन्होंने चंडीगढ़ से शिक्षा विभाग की एक टीम हमारे विद्यालय का अध्ययन करने भेजी। यह टीम हमारे विद्यालय में पूरे दिन रही और कक्षाओं में जाकर पढ़ाई देखी। शिक्षकों से साक्षात्कार लिए तथा वीडियोग्राफी की।

स्वार्थ की टकराहटें

इसके विपरीत एक दो प्रसंग और हैं जिन पर ध्यान देना जरूरी है। पूरे जिले में संपूर्ण साक्षरता अभियान का प्रचार-प्रसार हो रहा था। पढ़ना-बढ़ना आंदोलन के अंतर्गत प्रत्येक जन शिक्षा केन्द्र पर गांव के 15-50 आयु वर्ग के निरक्षर भाई-बहनों की समितियां बन रही थीं। साक्षरों के लिए संस्कृति केंद्र के नाम से ग्रामीण पुस्तकालय खोले जा रहे थे। हमारे विद्यालय में भी संस्कृति केन्द्र खुला। उसके लिए एक कमरा दिया गया। पुस्तकें मिलीं, पुस्तकें रखने के लिए अलमारी मिली। एक फर्श और लाउडस्पीकर भी मिला। संस्कृति केन्द्र के लिए बिजली की व्यवस्था की गई। संस्कृति केन्द्र में एक अखबार मंगाने की स्वीकृति मिल गई। एक अखबार का ग्रामीण संवाददाता जो अखबार भी बांटता था, हमारे संस्कृति केन्द्र में अपना अखबार लगवाना चाहता था। मैंने उसे बताया कि हमारे यहां अखबार आ रहा है। दूसरा अखबार खरीदने की व्यवस्था नहीं है। उसने अपने अखबार में समाचार लगाया कि मेरी शाला न तो समय पर खुलती है और न समय से बंद होती है और शिक्षक भी समय पर शाला नहीं आते।

समाचार पढ़कर शिक्षकों को बुरा लगा। शिक्षक और गांव वालों ने मिलकर ब्यूरो प्रमुख को पत्र लिखा कि आपके अखबार में झूठा समाचार छपा है। अतः इसका खंडन छापो, परन्तु उन्होंने खंडन नहीं छापा। मैं जिला शिक्षा अधिकारी के पास गया। वे बोले, ''कलेक्टर साहब ने मुझे इस समाचार को लेकर फोन किया था। मैंने कलेक्टर साहब को आपकी संस्था के बारे में विस्तार से बता दिया है। मैंने आपका विद्यालय परसों ही तो देखा था। सब ठीक चल रहा था। आप चिन्ता मत करो।''

दूसरा प्रसंग एक ऐसे जिला शिक्षा अधिकारी का है जो तीसरी बार यहां जिला शिक्षा अधिकारी बनकर आए। हर बार शिकायतों पर उन्हें हटाया गया। वे शालाओं के निरीक्षण कर शिक्षकों को सस्पेंड करते, उनसे घूस लेते और उन्हें उसी स्थान पर बहाल कर देते। यह उनकी मोटी कमाई का जरिया था। अशासकीय स्कूलों को मंडल परीक्षाओं में दसवीं और बारहवीं कक्षाओं का परीक्षा केन्द्र बनवाने में इन जिला शिक्षा अधिकारी की अहम् भूमिका रहती थी। इसमें उसकी कमाई कई गुना बढ़ जाती थी।

2001 में एक अशासकीय विद्यालय को दसवीं बोर्ड का परीक्षा केन्द्र बनाया गया था। यह स्थान मुख्य सड़क

से 8 किलोमीटर भीतर था। मेरी इस परीक्षा केन्द्र पर निरीक्षक के तौर पर ड्यूटी लगी। पहले दिन वे जिला शिक्षा अधिकारी उस परीक्षा केन्द्र पर सुबह से उपस्थित थे। उनकी उपस्थिति में पर्चा खुला। परीक्षा शुरू हुई। वे परीक्षा केन्द्र पर एक घंटा रहे, जिस अशासकीय विद्यालय के परीक्षार्थी वहां परीक्षा दे रहे थे। उसका संचालक जिला शिक्षा अधिकारी के पास आया। वह जिला शिक्षा अधिकारी से बोला, ''एक घंटा हो गया। आप यहां ऐसे बैठे रहे तो हमारा पेपर चौपट हो जाएगा।'' कुछ समय बाद जिला शिक्षा अधिकारी वहां से चले गए। नकल कराने वाले लोग अपने-अपने बच्चों को नकल की पर्चियां खिड़कियों से फेंकने लगे। परीक्षा कक्ष का माहौल बाजार जैसा हो गया और कक्ष में शोरगुल/भगदड़/छीना-झपटी मच गई। शेष पेपर ऐसे ही माहौल में सम्पन्न कराने पड़े। जिला शिक्षा अधिकारी इस दिन के बाद कभी उस परीक्षा केन्द्र पर नहीं आए। जिले में ऐसे अनेकों परीक्षा केन्द्र रहे हैं। कई सालों तक रहे हैं। इन केन्द्रों पर गोली नहीं चली। इसलिए चर्चित नहीं हो पाए।

अब इन्हीं जिला शिक्षा अधिकारी का परीक्षा को लेकर दूसरा चेहरा देखिए। मेरे विद्यालय में पूर्व माध्यमिक प्रमाण-पत्र परीक्षा चल रही थी। केन्द्र अध्यक्ष बाहर के शिक्षक थे। पर्यवेक्षक स्थानीय शिक्षक थे। अप्रैल 1, 2006 को दोपहर 2 से 5 बजे संस्कृत विषय का पेपर चल रहा था। परीक्षा में कोई गड़बड़ी नहीं थी। परीक्षा समाप्ति के 15-20 मिनट बाद जिला शिक्षा अधिकारी पुनः आए। उस समय उत्तर पुस्तिकाएं सील हो चुकी थीं और परीक्षार्थी जा चुके। कुछ पर्यवेक्षक भी जा चुके थे। सील पैकिट संकुल केन्द्र भेजना था। जिला शिक्षा अधिकारी ने कुछ पर्चियां इकट्ठी कीं, उन पर पर्यवेक्षकों के हस्ताक्षर कराए और 'सामूहिक नकल प्रकरण' बना दिया। अखबारों और टी.वी. वालों को मोबाइल फोन से सामूहिक नकल प्रकरण की चर्चा कर दी। टी.वी. पर 'गांव वालों ने नकल कराई' की पट्टी समाचार के रूप में चलने लगी। जिला शिक्षा अधिकारी ने अपने ऑफिस पहुंचकर केन्द्राध्यक्ष के खिलाफ निलंबन की कार्यवाही और पर्यवेक्षकों को कारण बताओ नोटिस जारी किए।

पर्यवेक्षक अपनी सफाई देते रहे। अंत में 8 पर्यवेक्षकों ने रुपये इकट्ठे कर जिला शिक्षा अधिकारी को दिए, तब मामला शान्त हुआ। सामूहिक नकल प्रकरण दर्ज होने के कारण यही परीक्षा बाद में नगर के विद्यालय में फिर से कराई गई। परीक्षा में परीक्षार्थी कम निरीक्षक ज्यादा थे, फिर भी संस्कृत विषय का परीक्षाफल 90 प्रतिशत से अधिक रहा। पालक शिक्षक संघ के अध्यक्ष ने ग्रामीणों के साथ कलेक्टर को एक ज्ञापन सौंपा जिसमें सामूहिक नकल न होने तथा ग्रामीणों को बदनाम करने का आरोप जिला शिक्षा अधिकारी पर लगाया। परन्तु उस पर कोई कार्यवाही नहीं हुई।

पंचायती राज और शिक्षा

शिक्षण संस्थाओं के पंचायती राज के अधीन आ जाने से मुख्य कार्यपालन अधिकारी जनपद पंचायत अपने आदेश सीधे विद्यालयों को भेजने लगे थे। उनके ऑफिस द्वारा किए जाने वाले कार्यों को भी वे शिक्षकों से कराने के लिए आदेश देने लगे थे।

पंचायती राज के अंतर्गत गठित ग्राम विकास समिति के सदस्यों को प्रशिक्षण देने के लिए जनपद पंचायत के सी.ई.ओ. ने विकासखंड के 20 शिक्षकों की ड्यूटी लगा दी कि ये 20 शिक्षक पहले स्वयं प्रशिक्षण लेंगे और इसके बाद ग्रामीण अंचलों में प्रशिक्षण देने विभिन्न पंचायतों में जाएंगे। उनके ऐसे आदेश थे। इसी प्रकार संविदा शाला शिक्षकों की भर्ती के आवेदन प्राप्त करने, उनकी जांच करने, आदि के काम में भी विकासखंड के प्रधानाध्यापकों और शिक्षिकों की ड्यूटी लगने लगी थी जो महीनों तक चलती थी।

पालक शिक्षक संघ अध्यक्ष भी इन सब चीजों को अनुभव करते थे पर वे प्रत्यक्ष विरोध करने को तैयार नहीं थे। पंचायती राज में भी जिला शिक्षा अधिकारी अपनी हैसियत बनाए हुए थे। जन प्रतिनिधियों को

कानूनी जानकारी नहीं होती थी। अतः उनसे चर्चा करते समय वे हिचकते थे। अधिकारी वर्ग अपना काम निकलवाना चाहता था। काम कौन करेगा? विरोध कहां से नहीं होगा? दबाव किस पर चला जाएगा? ईमानदारी से काम कौन करेगा? किसके काम में विश्वसनीयता रहेगी? आदि प्रश्न खड़े होने पर सब अधिकारियों की निगाह शिक्षकों पर आकर टिकती थी। ग्रामीण क्षेत्रों में किराए से रहने के लिए शिक्षकों को भवन उपलब्ध नहीं होते। भवन उपलब्ध भी होते हैं तो उनमें वे सुविधाएं नहीं होतीं, जिनके नगर में रहते हुए वे आदी हो चुके होते हैं। अतः नगर से गांव की ओर रोजाना आने-जाने वाले शिक्षकों के लिए नगर के ऑफिस में काम करना सुविधाजनक और लाभदायक होता है। अतः वे नगर में ओ.डी. पर रहना पसंद करते हैं। अपनी सुविधा के आगे अपने कर्तव्य के प्रति उत्तरदायित्व की भावना क्षीण रहती ही है।

पंचायती राज के आते ही गांव के विकास के लिए धनराशि शासन से आने लगी है। वह सरपंच के खाते में सीधे जमा हो जाती है। इस राशि का अधिकतर सरपंच दुरुपयोग करते हैं। सरपंचों के काम जनपद कार्यालय से होने होते हैं। सरपंचों और जनपद कार्यालयों के बीच बंदर-बांट पहले से ज्यादा हो गई है। ग्रामीण स्तर पर भ्रष्टाचार बढ़ा है। ऐसी स्थिति में सरपंच और मुख्य कार्यपालन अधिकारी जनपद पंचायत या जनपद अध्यक्ष एक-दूसरे के सहयोगी दिखते हैं।

ग्रामीण स्तर पर जनप्रतिनिधियों का सहयोग विद्यालय को नहीं मिल रहा है। अगर कहीं मिल भी रहा है तो इसका मतलब यह नहीं है कि स्कूल या शिक्षा के विकास को लेकर उनकी जागरूकता बढ़ गई है बल्कि जनप्रतिनिधि शासकीय सेवकों को अधीनस्थों की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन पटवारी, कृषि विस्तार अधिकारी की सामाजिक हैसियत शिक्षक से अच्छी है और उनकी मदद से लोगों के कई व्यक्तिगत काम निपटते हैं।

जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा मेरे विद्यालय का झूठा सामूहिक नकल प्रकरण बना देना, अखबारों और टी. वी पर यह समाचार प्रसारित करवा देना कि ग्रामीणों ने विद्यालय में आकर नकल कराई, गांव की अस्मिता पर सीधी चोट थी। परन्तु पालक शिक्षक संघ अध्यक्ष द्वारा कलेक्टर को दिए ज्ञापन पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। इसी तरह स्थानीय पत्रकार द्वारा विद्यालय के समय पर न लगने, शिक्षकों के समय पर न आने और न पढ़ाने की झूठी खबरबाजी करना गांव के जनप्रतिनिधियों के लिए अखरने वाली बात तो थी परन्तु उनमें से किसी ने सीधे उस पत्रकार से नहीं पूछा कि ऐसा क्यों किया।

उपर्युक्त दोनों बिन्दु यह समझने के लिए पर्याप्त हैं कि पंचायती राज सिर्फ कुछ चुने हुए और कुछ सरकारी सेवकों के लिए ही फायदेमंद हुआ है। शेष का काम वोट डालने तक ही सीमित है।

मैंने अनुभव किया है कि भ्रष्ट आचरण की कुशलता के कारण एक जिला शिक्षा अधिकारी ने अपना स्थान हर बार बनाए रखा। उसका व्यक्तिगत भ्रष्टाचार किस तरह जिले में स्वीकृति पा लेता था, यह समझने का विषय है। ऐसी परिस्थितियों के बीच भी अगर मैं अपने विद्यालय को जिले के आदर्श विद्यालय के रूप में स्थापित करने के लिए प्रयासरत रहा तो इसका सीधा संबंध मेरे उत्साह से था। उत्साह के साथ गांव के लोगों से मेरे व्यक्तिगत संबंध, मेरी कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी ने मुझे स्थानीय सहयोग दिलाया, परन्तु यह सहयोग मेरे तक ही सीमित रहा। मेरी सेवानिवृत्ति के बाद यह विद्यालय अपने वैभव को पुनः खोता जा रहा है।

इस अनुभव से यह निष्कर्ष निकालना गलत नहीं होगा कि शिक्षक चाहे और मेहनत करे तो स्कूल की दशा सुधारने के लिए गांव के समाज का सहयोग प्राप्त कर सकता है, पर स्कूल को अपनी संस्था समझकर ऐसा सहयोग देना गांव के समाज का स्वभाव नहीं बना है। पंचायती राज में ऐसा हो सकेगा या नहीं, अभी कहना मुश्किल है। ◆